(वेदपर्व श्रावणी के उपलक्ष्य में)

हम वेदों की ओर क्यों लौटें?

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती को आर्य अनुयायियों द्वारा एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और प्यारे विशेषण से अलंकृत किया जाता है- **'वेदों वाले ऋषि।'** क्योंकि महर्षि का जीवन वेदमय था, वेदों के प्रचार-प्रसार के लिये था, वेदोद्धार के लिये था। कई हजार वर्षों के बाद उन्होंने वेदों का पुनरुद्धार किया, वेदाध्ययन का प्रचलन किया, मानवमात्र के लिये उनको प्रकट किया और वेद पढ़ने का अधिकार प्रदान किया। अत: वे इस युग के वेदोद्धारक ऋषि कहलाये। उनके सम्पूर्ण जीवन का, समग्र लेखन का, समस्त वक्तव्यों का प्रमुख सन्देश था- **वेदों की ओर लौटो।** यही सन्देश आदिसृष्टिकालीन ऋषि ब्रह्मा से लेकर महाभारतकालीन जैमिनि मुनि का था। प्रश्न उत्पन्न होता है कि आखिर वेदों को क्यों पढ़ें? और क्यों वेदों की ओर लौटें?

सभी ऋषि-मुनियों की मान्यता रही है कि वेद श्रेष्ठ आचरण की शिक्षा देने वाले शास्त्र हैं, अत: श्रेष्ठ मानव के निर्माता हैं। श्रेष्ठ मानव के निर्माण से परिवार, समाज और राष्ट्र भी श्रेष्ठ बनेंगे और इनका उत्थान एवं कल्याण होगा। वेदविरुद्ध आचरण से पतन होगा। महर्षि ने अपने जीवनकाल में इस स्थिति को देखा था।

देश के पतन का कारण और उत्थान का उपाय

महर्षि दयानन्द भारतीय संस्कृति-सभ्यता, परम्परा, शिक्षा के ह्रास और देश के पतन का एक प्रमुख कारण मानते हैं- **वेद और वेदानुकूल शास्त्रों की शिक्षा का त्याग।** महर्षि वेदों की शिक्षा को कितना महत्त्वपूर्ण मानते थे, इसका संकेत इस बात से मिलता है कि उन्होंने दो कार्यों के लिए परमात्मा से प्रार्थना और याचना की है- एक-ऋषि-मुनि प्रणीत आर्ष शिक्षा को भारत में पुन: प्रवृत्त कराने हेतु और दो-गौ आदि पशुओं की रक्षा कराने हेतु। भारत की पतनावस्था को देखकर वे भावविह्वल होकर लिखते हैं- **''देश इस वक्त ऐसा बिगड़ा है कि इतना बिगाड़ कोई देश में देखने में नहीं आता है।''** (ऋषि दयानन्द के पत्र-विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४१)

अपने देश के पुनरुत्थान का उपाय वेद और वेदानुकूल शिक्षा को मानते हुए महर्षि तत्कालीन शासक और परमात्मा से प्रार्थना करते हुए लिखते हैं- **''जो कोई अन्यदेशीय राजा आर्यावर्त में है, उससे भी मेरी प्रार्थना यह है कि इस देश में सनातन ऋषि-मुनियों के किये उक्त ग्रन्थ और ऋषि-मुनियों द्वारा की गई वेदों की व्याख्या...उनकी प्रवृत्ति यथावत् करावे। इसी से यह देश सुधरेगा। अन्यथा नहीं।...सो मैं परमेश्वर से अत्यन्त प्रार्थना करता हूँ कि हे परमेश्वर!... हे करुणानिधे! सब जगत् के ऊपर ऐसी कृपा करें जिससे कि सम्पूर्ण विद्या का लाभ वेदादिक सत्यशास्त्रों का ऋषि-मुनियों की रीति से हो।''** (वही, पृ. ४२,४३)

वेद विश्व की प्राचीनतम ज्ञान-विज्ञान की धरोहर

भारतीय परम्परा वेदों को आदि सृष्टि में प्राप्त ज्ञान मानती है। वेदों के कटु आलोचक पाश्चात्य लेखक भी इस तथ्य को एकमत से स्वीकार करते हैं कि विश्व के उपलब्ध साहित्य में वेद प्राचीनतम ग्रन्थ हैं, प्राचीनतम ज्ञान है। इस प्रकार वेद विश्व की प्राचीनतम धरोहर और ज्ञानकोश हैं। इस धरोहर का भाषावैज्ञानिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक महत्त्व है जिसके ज्ञानार्जन के बिना हम इन क्षेत्रों में आगे नहीं बढ़ सकते। वेद मानव एवं मानवता के आदितम मूल हैं, अत: ज्ञान तथा किसी भी विद्या की आरम्भिकता और पूर्णता के लिए वेदों को सही अर्थों में जानना ही होगा और उनको जानने के लिए उनको पढ़ना होगा, अन्यथा हमारा ज्ञान और उक्त विद्याएँ अपूर्ण रह जायेंगी।

आज विश्व में अनेक सम्प्रदाय हैं और उनके अपने-अपने धार्मिक ग्रन्थ हैं। उन्होंने वेदों को आर्यों का धर्मग्रन्थ प्रचारित कर दिया है और कुछ नवीन ग्रन्थों को अपना धर्मग्रन्थ स्वीकार किया हुआ है। वे यह भूल जाते हैं कि जब वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं तो उनमें वर्णित वैदिक अर्थात् आर्य संस्कृति भी विश्व की प्राचीन संस्कृति सिद्ध होती है, क्योंकि तब न कोई अन्य धर्म पुस्तक थी, न

वैदिक धर्म से भिन्न कोई धर्म या मत था। केवल वैदिक या आर्य धर्म ही था। वेदोक्त धर्म अर्थात् आर्यत्व, मानवतावाद का ही दूसरा नाम है। इस प्रकार उसकी जड़ें वेदों से ही जुड़ी हैं। अतः वेदों का अध्ययन करना विश्व के सभी सम्प्रदाय-अनुगामियों के लिए भी उतना ही उपयोगी और निकटतापूर्ण है जितना वैदिकजनों अर्थात् आर्यों (हिन्दुओं) के लिये। अपनी मूल मानवीय धरोहर से जुड़ना कृतज्ञता के सामाजिक भाव का स्वीकार और प्रसार है अतः हम सबको वेद पढ़ने चाहियें।

मानवता का प्रेरणास्त्रोत

वेद किसी समुदाय, सम्प्रदाय, जाति या देश विशेष के ग्रन्थ नहीं हैं, वे मानवता के स्रोत हैं। उनमें पदे-पदे मानवीय कर्त्तव्यों और दानवीय अकर्त्तव्यों का निर्देश है, उनका परिणाम वर्णित है और उनका औचित्य विहित है। वेदों में आने वाले व्यक्ति, स्थान, समुदाय, जाति आदि के नाम वस्तुतः आध्यात्मिक और आधिदैविक रूपक हैं। उन्हें भ्रान्ति और अपूर्ण ज्ञान के आधार पर ऐतिहासिक अथवा व्यवहार के पदार्थ मान लिया जाता है। वेदोक्त सभी वर्णन धर्म-अधर्म, मानवता-दानवता और ज्ञान-विज्ञान के प्रतिपादक हैं। उन नामों, पदार्थों और घटनाओं के माध्यम से वेदों में मानव और मानवता के विकास तथा दानव और दानवता के विनाश को दिखाना ही लक्ष्य है। वहाँ यदि मानव, देव, ऋषि, मुनि, इन्द्र, विष्णु आदि का उल्लेख है तो वे इन गुणों से युक्त मानवों के स्तरों के वाचक हैं और असुर, राक्षस, दानव, वृत्र, अहि, बल आदि का उल्लेख है तो वे शब्दार्थों में निहित दुर्गुणों के प्रतीक हैं, किसी जाति या व्यक्ति के नहीं। यही कारण है कि वेदोक्त वर्णनों का परवर्ती ऐतिहासिक घटनाओं से ताल-मेल नहीं बैठता। वेद यह नहीं कहता कि तुम अमुक सम्प्रदायधारी बनो, अमुक देश के बनो, अमुक जाति के बनो। वह केवल मानव बनने की बात कहता है-"**मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्**" (ऋग्. १०.५२.६) 'हे मनुष्यो! तुम वस्तुतः मानवीय गुणधारी मनुष्य बनो, मननशील बनो। तुम मनुष्य बनोगे तो तुम्हारी भावी पीढ़ियाँ मानव के परम रूप देवत्व को प्राप्त कर सकेंगी।'

यदि हम विश्व के वर्तमान सम्प्रदायों के धर्मग्रन्थों का अवलोकन करें तो उनमें पक्षपात, ईर्ष्या-द्वेष, अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा व दूसरों की निन्दा, अपनी जय और दूसरों की पराजय, अपने सम्प्रदाय के अनुगामियों पर कृपा और दूसरों पर क्रूरता आदि के कथन मिलेंगे। वेदों में केवल मानव और मानवीय गुणों की प्रशंसा तथा दानव और दानवीय गुणों की निन्दा मिलेगी। उनमें संकीर्णता न होकर वैश्वभाव की व्यापकता है। भारतीय संस्कृति में मानवीय गुणों को ही धर्म कहा गया है और अमानवीय दुर्गुणों को अधर्म। इसी आधार पर वेद "धर्म का स्रोत" हैं। वेदोक्त धर्म आज का संकीर्ण धर्म नहीं है, वह ऐसा ग्राह्य आचरण है जो मनुष्य बनने के लिए प्रत्येक स्थिति और अवस्था में 'धारण करने योग्य' है। यही कारण है कि मानवता, उदारता एवं दयालुता वेदाधारित भारतीय संस्कृति की उल्लेखनीय विशेषताएँ रही हैं।

आज समाज में हम संकीर्णता और उदारता की प्रतिक्रिया का स्पष्ट अन्तर देख रहे हैं। यह सहज मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है कि व्यक्ति जैसा पढ़ेगा वैसे संस्कार और विचार बनेंगे, जैसे संस्कार और विचार बनेंगे वैसा आचरण होगा, जैसा आचरण होगा वैसी समाज में प्रतिक्रिया होगी और जैसी प्रतिक्रिया होगी उसी के अनुसार समाज में सुख-शान्ति या दुःख-अशान्ति का वातावरण बनेगा। वेदों में वर्तमान सम्प्रदायों की संकीर्णता न होकर "**वसुधैव कुटुम्बकम्**" के निर्माण की उदारता निहित है। वैश्वीकरण के इस युग में पूरे विश्व को परिवारवत् बनाने की धारणा को यदि कोई धर्मग्रन्थ पल्लवित और पुष्पित कर सकते हैं तो वे निर्विवाद रूप से वेद हैं। अतः हम सबको वेद पढ़ने चाहियें ताकि विश्वबन्धुत्व की भावना का विस्तार हो।

सत्यविद्याओं के आदि आगार

आर्यों के आदिपुरुष ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त प्रत्येक ऋषि, मुनि और लेखक की यह मान्यता रही है कि उन्होंने अपनी विद्या को वेदों से जानकर लिखा है। महर्षि दयानन्द ने उन्नीसवीं शताब्दी में जब इसी प्राचीन धारणा को "**वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है**" कहकर प्रस्तुत किया और अपने वेदभाष्य के द्वारा सिद्ध किया तो मैक्समूलर आदि पाश्चात्य भाष्यकारों व लेखकों ने इस धारणा का उपहास उड़ाया। दुराग्रह और मताग्रह-वश वे

महर्षि की मूल तर्कणा को नहीं समझ पाये। कभी-कभी बड़े से बड़ा विद्वान् और लेखक मस्तिष्क के किसी बिन्दु की शिथिलता के कारण असन्तुलित आचरण उपस्थित कर जाता है। बहुत-से आधुनिक लेखकों और वैज्ञानिकों की यही विरोधाभासी विचित्र स्थिति है। उन्हें जिस पर हँसना चाहिये उस पर मौन हैं और जिस पर गम्भीर होना चाहिये उस पर हँसते हैं। आज के वैज्ञानिकों ने नये-नये सिद्धान्तों का आविष्कार कर एक ओर दूसरे ग्रहों पर कदम रख दिया है तो दूसरी ओर आज भी डार्विन के इस सिद्धान्त को पकड़े बैठे हैं कि मनुष्य का विकास वनमानुषों और बन्दरों से हुआ। लगभग दो शताब्दियों से पशुशालाओं में इन पर नित नये प्रयोग करके इन्हें मनुष्य की तरह शिक्षित करने के प्रयास किये जाते रहे हैं किन्तु आज तक कोई वनमानुष या बन्दर न तो मनुष्य की तरह शिक्षित हुआ और न मनुष्य के रूप में विकसित हुआ। फिर भी उस हास्यास्पद धारणा को दृढ़मूल कर रहे हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त को अमान्य सिद्ध किया है किन्तु उनकी आवाज की स्थिति 'नक्कारखाने में तूती की आवाज' जैसी है।

दूसरी ओर, भारतीय साहित्य यह घोषणा करता है कि 'मनुष्य मूलतः मनुष्य के रूप में उत्पन्न हुआ है और इसे आरम्भ में ईश्वर की प्रेरणा से ज्ञान प्राप्त हुआ है।' इस सिद्धान्त को स्वीकार्य कोटि का नहीं मानते, जबकि प्राकृतिक साक्ष्य इस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। प्राकृतिक नियम के अनुसार, प्राकृतिक प्रक्रिया सतत चलती रहती है। बीज के वृक्ष से बनना, प्रजनन प्रक्रिया से प्राणियों का वही वंश चलना प्राकृतिक प्रक्रियाएँ हैं। ये सतत चल रही हैं। मनुष्य से मनुष्य आज भी जन्म ले रहा है किन्तु बन्दर से दुनिया के किसी भाग में कोई मनुष्य नहीं बन रहा। और न सहस्रों वर्षों के ज्ञात इतिहास में कभी बना है। आज एक ओर उच्चतम मानवीय संस्कृति-सभ्यता विकसित है, तो समकाल में दूसरी ओर अफ्रीका, अंडमान आदि के जंगलों में पूर्ण नग्न, ज्ञानरहित, संस्कृति-सभ्यता विहीन पशुवत् मनुष्य वर्तमान हैं। उन्हें आज तक ज्ञान का चतुर्थांश भी क्यों नहीं प्राप्त हुआ अथवा उनमें ज्ञान विकसित क्यों नहीं हुआ? स्पष्ट है कि ईश्वरीय प्रेरणा से जिन ग्रहणशील मेधावी जनों में ज्ञान का प्रकाश हुआ, उन्होंने उसे ग्रहण कर अन्यों अथवा भावी पीढ़ियों को दिया। इस प्रकार उनके सम्पर्क में आने से ज्ञान, संस्कृति-सभ्यता का विकास होता गया। यही स्थिति वेदों की है। ईश्वर ने जो ज्ञान का प्रकाश ऋषियों के आत्मा में किया, उसको ग्रहण करने के उपरान्त ज्ञान का प्रसार हुआ। उसी ज्ञान का नाम वेद है। उसमें वर्णित एक ज्ञान से दूसरा ज्ञान वर्धित होता गया। यह थी वह मूल तर्कणा जिसे भारतीय परम्परा स्वीकारती और कहती आ रही है। इसमें न तो कोई अवैज्ञानिकता है, न अप्राकृतिक प्रक्रिया और न उपहास की स्थिति। यह कोरा आस्थावाद भी नहीं है।

ईश्वरीय प्रेरणा से प्राप्त उस वेदरूपी ज्ञान में जो आदेश, निर्देश, उपदेश, विधान, ज्ञान-विज्ञान थे उनसे सामाजिक व्यवस्थाएँ बनीं और विद्या रूपी ज्ञान का अंकुर पड़ा। फिर एक विद्या से दूसरी विद्या चिन्तन-मनन द्वारा विकसित होती गई। समाज सुसंस्कृत, शिक्षित एवं सभ्य बना। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्थाओं और कर्त्तव्यों की वह आदिम मूल प्रेरणा वेदों में निहित है। अतः उस ज्ञान के अर्जन के लिए हमें वेद पढ़ने चाहियें। वेद में बीज रूप में अनन्त ज्ञान निहित है, क्योंकि उसका प्रदाता भी अनन्त ज्ञानवान् है।

मोक्ष प्राप्ति का साधन और ईश्वरोपासना का माध्यम

वैदिक संस्कृति में प्रत्येक मनुष्य का चरम लक्ष्य 'मोक्षप्राप्ति' को माना गया है। दुःखों से मुक्ति और जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय 'मोक्षप्राप्ति' है और मोक्षप्राप्ति का एकमात्र उपाय 'ईश्वर-साक्षात्कार' है। इस स्तर तक मनुष्य को वेदोक्त धर्म-कर्म पहुँचाते हैं। उन कर्मों के ज्ञान और वेदोक्त आचरण के लिए वेद का अध्ययन परम आवश्यक है। महर्षि मनु ने वेदाध्ययन को सबसे प्रमुख कर्त्तव्य और 'परम तप' घोषित किया है। वेद के स्वाध्याय को सायं-प्रातः अनुष्ठित किये जाने वाले 'ब्रह्मयज्ञ' का अनिवार्य भाग माना है। योगदर्शन और उसके भाष्य में वेदों के स्वाध्याय को योगसिद्धि और इष्टदेव परमात्मा की प्राप्ति का साधन स्वीकार किया है-

स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः (योग. २.४४)

अर्थात्- 'वेदों का स्वाध्याय करने से उपासक सबके इष्टदेव परमात्मा के साथ घनिष्ठ मेल हो जाता है।' फिर-

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।।

(योग. व्यासभाष्य १.४८)

अर्थात्-'स्वाध्याय से योग में सिद्धि प्राप्त करे और योग से स्वाध्याय पर मनन करे। योग और स्वाध्याय की समृद्धि से परमात्मा आत्मा में प्रकाशित होता है, अर्थात् ईश्वर का साक्षात्कार होता है।'

यज्ञों की समृद्धता वेद मन्त्रों से

सभी वैदिक ऋषियों ने एकमत से उक्त तथ्य को स्वीकार किया है। इन ऋषियों का निर्विवाद मत है कि वेदों की वाणी "दैवी वाक्" है और दैवी वाक् से ईश्वरोपासना और यज्ञानुष्ठान अधिक फलदायक होते हैं। शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि मानुषवाक् में किये गये सभी यज्ञ हीनयज्ञ हैं-

"व्यृद्धं वै तद् यज्ञस्य यन्मानुषम्"

(१.४.३.३५)

अर्थात्- 'जो मानुष वाक् में यज्ञों का करना है वह यज्ञ का हीन रूप है।' अत: यज्ञों की समृद्धता, मोक्ष की सफलता प्राप्त करने के लिये हमें वेद पढ़ने चाहियें।

स्वयं वेदों में अनेकत्र कहा गया है वेदों को पढ़ने का अधिकार मानव-मात्र को है। सभी यथासामर्थ्य पढ़ें। यज्ञों के अनुष्ठान का अधिकार भी मानव-मात्र को है। जो लोग शूद्र, नारी आदि किसी भी मानव के लिए वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान आदि का निषेध करते हैं वे वेदों के हितैषी नहीं, शत्रु हैं; ईश्वर के अनुयायी नहीं, विरोधी हैं; वैदिक संस्कृति के उपासक नहीं, घातक हैं। वस्तुत: वे मानव और मानवता के प्रच्छन्न शत्रु हैं। ऐसे लोगों को स्वयं को वैदिक या वेदानुयायी कहना ही छोड़ देना चाहिये। वे वेद के नाम पर पाखण्ड फैलाते हैं, स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

वेदों का दुर्भाग्योदय

इस देश में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में वेदाध्ययन परम्परा का दुर्भाग्योदय तब आरम्भ हुआ जब उसके स्थान पर रूढ़िवादी पौराणिकों ने अधिकांश जनता के लिये वेद पढ़ने का अधिकार वर्जित कर दिया और उसे केवल अपने लिए सुरक्षित करके अन्यों को वेदों के दर्शन करना भी निषिद्ध कर दिया। इस प्रकार उन लोगों ने देश को शिक्षा से वंचित कर अज्ञानी बना दिया। विश्वगुरु का गौरव प्राप्त यह भारत योग्य शिष्य भी नहीं रहा। रूढ़िवादी पौराणिकों की कुण्ठित बुद्धि की सोच देखिये कि संसार के सभी मत वाले अपने ग्रन्थों का अधिकाधिक भाषाओं में अनुवाद कराकर लाखों की संख्या में मुफ़्त वितरित करते हैं। उससे उनका मत भी विस्तारित हुआ है। पौराणिक लोगों ने सारा बल अपने धर्मग्रन्थों को छुपाने में लगाया है। उससे वैदिक धर्म का ह्रास होता गया। इस प्रकार उनकी यह प्रवृत्ति धर्मविनाशक सिद्ध हुई है।

महर्षि दयानन्द ने वेदाध्ययन का मानव मात्र को अधिकार पुन: प्रदान किया। उन्होंने तर्क दिया है कि परमात्मा ने सभी स्त्री-पुरुषों को बुद्धि, वाणी, श्रोत्र वेदाध्ययन-श्रवण आदि के लिए प्रदान किये हैं, अत: प्रत्येक स्त्री-पुरुष का ज्ञान-विज्ञान प्राप्ति का स्वाभाविक अधिकार है। मानव मात्र को वेद पढ़ाये बिना हम वेद के **"कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्"** के आदेश का अनुपालन नहीं कर सकते। अनार्यों, पिछड़ों को भी जब वेद पढ़ायेंगे तो तभी वे आर्य बनेंगे और वैदिक धर्म का विस्तार हो सकेगा। इसीलिए महर्षि ने सभी को यह सन्देश दिया कि **'वेदों की ओर लौटो।' 'वेदों वाले ऋषि'** ने जो हमें वेदाध्ययन करने का शुभ अवसर प्रदान किया है, उसका लाभ मानव मात्र को उठाना चाहिये। **डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

आर्ष ग्रन्थों का गठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।